Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

प्रश्नपत्र-1 (खंड-ख)

(हिन्दी साहित्य का इतिहास)

भाग 1

- हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्त्व
- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
- आदिकाल
- भक्तिकाल
- रीतिकाल

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHL02

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

प्रश्नपत्र–1 (खण्ड–ख)

(हिन्दी साहित्य का इतिहास)

भाग–1

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web: www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

1.	**हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्त्व**	**5–8**
1.1	वैज्ञानिक तकनीकी युग में साहित्य की स्थिति	7
1.2	संचार क्रांति और साहित्य	7
2.	**हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा**	**9–27**
2.1	आचार्य शुक्ल पूर्व साहित्येतिहास लेखन	9
2.2	आचार्य रामचंद्र शुक्ल का साहित्येतिहास लेखन परंपरा में योगदान	12
2.3	आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का इतिहास लेखन परंपरा में योगदान	14
2.4	आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का साहित्येतिहास परंपरा में योगदान	16
2.5	साहित्येतिहास लेखन परंपरा के समकालीन प्रयास	17
2.6	हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या	20
2.7	हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या	22
2.8	हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में इतिहास दर्शन की समस्या	23
2.9	हिन्दी साहित्य के आरंभ का विवाद	25
2.10	साहित्येतिहास के पुनर्लेखन का प्रश्न	26
3.	**आदिकाल**	**28–52**
3.1	सिद्ध साहित्य	28
3.2	नाथ साहित्य	29
3.3	सिद्ध-नाथ साहित्य 'साहित्य' है या नहीं?	32
3.4	जैन काव्य	33
3.5	अमीर खुसरो	35
3.6	विद्यापति का काव्य	37
3.7	रासो काव्य धारा	42
3.8	चंदबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो	44
3.9	पृथ्वीराज रासो तथा अन्य रासो काव्यों की प्रामाणिकता का प्रश्न	46
3.10	पृथ्वीराज रासो : ट्रैजिडी के रूप में	49
3.11	'आदिकाल' के लिये उपयुक्त नामकरण	50
4.	**भक्तिकाल**	**53–89**
4.1	भक्ति की अवधारणा	53
4.2	निर्गुण भक्ति बनाम सगुण भक्ति	53
4.3	भक्तिकाल के दार्शनिक आधार	54
4.4	भक्ति आन्दोलन का उद्‌भव	57
4.5	'निर्गुण ज्ञानाश्रयी' या 'संत' काव्यधारा	59

4.6 प्रमुख संत कवियों का परिचय 62
4.7 सूफी काव्यधारा (निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्य) 65
4.8 सूफी शब्द का अर्थ 67
4.9 सूफी काव्यधारा का उपयुक्त नामकरण 68
4.10 सूफी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय की चेतना 68
4.11 सूफी प्रबंध कल्पना: भारतीय या अभारतीय 69
4.12 सूफी प्रेम पद्धति : भारतीय या अभारतीय 70
4.13 प्रमुख सूफी कवि 71
4.14 कृष्ण भक्ति काव्यधारा 73
4.15 कृष्ण काव्य का दार्शनिक आधार 76
4.16 पुष्टिमार्ग 76
4.17 अष्टछाप 77
4.18 प्रमुख कृष्ण कवि 78
4.19 रामभक्ति काव्यधारा 83
4.20 प्रमुख रामभक्त कवि 85
4.21 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ 88

5. रीतिकाल **90–128**

5.1 रीति से अभिप्राय 90
5.2 रीतिकाल के उदय की पृष्ठभूमि 90
5.3 रीतिकाल के साहित्य का वर्गीकरण 91
5.4 रीतिकाव्य का प्रवर्तक कौन? 92
5.5 रीतिकाव्यधारा या रीतिबद्ध काव्यधारा 93
5.6 रीतिबद्ध कवियों के आचार्यत्व का प्रश्न 95
5.7 केशवदास (1555–1617 ई.) 96
5.8 पद्माकर (1753–1833 ई.) 101
5.9 अन्य रीतिबद्ध कवि 103
5.10 रीतिसिद्ध काव्य 105
5.11 कवि बिहारीलाल 105
5.12 रीतिमुक्त या रीति स्वच्छंद काव्यधारा 106
5.13 घनानंद (1673ख1761 ई.) 107
5.14 रीतिइतर काव्य 109
5.15 रीतिकाव्य व ललित कलाओं का संबंध 112
5.16 रीतिकाल के उदय के कारण 113
5.17 रीतिकाल के पतन के कारण 115
5.18 रीतिकाल का नामकरण 115
5.19 रीतिकालीन साहित्य के लिये समुचित और प्रासंगिक प्रतिमान 118

अध्याय
1

हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्त्व

वर्तमान वैज्ञानिक तकनीकी युग में यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि साहित्य जैसी कलाएँ जो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पोषित नहीं करतीं, उनकी कोई प्रासंगिकता है या नहीं। प्रासंगिकता का अर्थ है कि वह वस्तु समाज के अस्तित्व या विकास में कोई ऐसा योगदान दे पाती है या नहीं जो समाज के लिये महत्वपूर्ण या अपरिहार्य हो। कोई भी साहित्य मनुष्य का पेट चाहे न भरे, वह मनुष्य को मनुष्य की तरह रहना अवश्य सिखाता है। हिन्दी साहित्य अपनी प्रासंगिकता की तमाम कसौटियों पर न केवल अतीत में खरा उतरता आया है अपितु समकालीन चौतरफा दबावों के बीच भी अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रहा है।

साहित्य की प्रासंगिकता का पहला प्रतिमान है– मनुष्य को संवेदनशील बनाने की उसकी क्षमता। संवेदनशीलता वह क्षमता है जिससे मनुष्य अपने आसपास के परिवेश, अन्य मनुष्यों तथा प्राकृतिक जीवन में निहित वेदनाओं को गहराई से महसूस कर पाता है। दूसरों के दुख में दुखी होने की क्षमता ही वह शक्ति है जो समाज के जटिल ताने-बाने को संरचित करती है। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से फूटी कविता क्रौंच पक्षी के प्रति उनकी तीव्र संवेदनशीलता का ही विस्फोट था। गोदान, दिव्या जैसे उपन्यास तथा हरिजनगाथा जैसी कविताएँ इसी संवेदन क्षमता को उद्‌बुद्ध करती हैं। छायावादी कवि ने तो कहा भी है–

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।"

साहित्य की प्रासंगिकता का दूसरा प्रतिमान यह है कि वह न सिर्फ वैचारिक स्तर पर प्रगतिशीलता को धारण करता है बल्कि अपने समय की प्रगति-विरोधी रूढ़िवादी तथा यथास्थितिवादी वैचारिकता का पुरज़ोर खंडन भी करता है। हिन्दी साहित्य में हर युग में ऐसा हुआ है। भक्तिकाल में कबीर ने, रीतिकाल में घनानन्द ने, आधुनिक युग में भारतेन्दु, निराला, मुक्तिबोध तथा प्रेमचन्द ने अपने-अपने समय की प्रतिमानवीय शक्तियों से लगातार वैचारिक स्तर पर संघर्ष किया है। आज के समय में हम अपने संविधान के माध्यम से जिस समतामूलक समाज का स्वप्न देखते हैं, वह कबीर और निराला की आँखों ने ही पहली बार देखा था। कबीर कहते हैं–

(i) "जाति पाति पूछे नहिं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।"
(ii) "हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़ते हैं मरम कोऊ नहिं जाना।"

साहित्य की प्रासंगिकता की एक कसौटी यह भी है कि वह समाज में **वांछनीय परिवर्तनों के लिये सक्रिय रूप से सहायक** हो पाता है। साहित्य समाज का सिर्फ तटस्थ दर्पण नहीं है बल्कि समाज के जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप करता है। जहाँ-जहाँ समाज कमज़ोर है, वहाँ वह परिवर्तन का आह्वान करता है। भारत-भारती जैसी रचनाएँ पूरे देश को पराधीनता के विरुद्ध एकजुट करने के लिये आज तक याद की जाती हैं। दिनकर तथा जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियाँ क्रांति का ही आह्वान करती हैं–

"सदियों की ठण्डी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।" – दिनकर

"हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।" –जयशंकर प्रसाद

अध्याय
2

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की एक सुदीर्घ परंपरा है। विद्वानों में सहमति है कि इस परंपरा का 'टर्निंग पॉइंट' आचार्य शुक्ल का साहित्येतिहास लेखन में आना है। अत: इस संपूर्ण परंपरा को आचार्य शुक्ल पूर्व, शुक्ल युगीन तथा शुक्लोत्तर कालखंडों में बाँटकर देखा जा सकता है।

2.1 आचार्य शुक्ल पूर्व साहित्येतिहास लेखन

शुक्ल पूर्व साहित्येतिहास परंपरा के दो रूप हैं- अनौपचारिक तथा औपचारिक। अनौपचारिक ग्रंथ वे हैं जो इतिहास लेखन के दृष्टिकोण से नहीं लिखे गए हैं और जिनमें रचनाकारों के जीवनवृत्त के संकलन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। औपचारिक परंपरा का सूत्रपात 19वीं शताब्दी में हुआ जब कुछ इतिहासकारों ने पहली बार हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने की सजग कोशिश की।

अनौपचारिक इतिहास लेखन

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की औपचारिक शुरुआत तो 19वीं शताब्दी में हुई, किन्तु भक्तिकाल तथा उसके आस-पास के दौर में कुछ अनौपचारिक प्रयास दिखाई पड़ते हैं। ऐसे प्रमुख प्रयास हैं- 'भक्तमाल', 'कालिदास हजारा', 'कविमाला', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि। एक दृष्टि से सिख धर्म के धार्मिक ग्रंथ 'आदि ग्रंथ' को भी इस वर्ग में शामिल किया जा सकता है।

इन ग्रंथों में इतिहास बोध का अभाव है। रचनाकार के समय व तिथियों का उल्लेख भी नहीं है। सिर्फ कवियों के नाम व परिचय दिए गए हैं। तब भी, साहित्येतिहास की प्रथम प्रवृत्ति यहीं दिखती है। इस दौर के प्रमुख ग्रंथों का परिचय निम्नलिखित है:

भक्तमाल

'भक्तमाल' नाभादास द्वारा रचित ग्रंथ है। यह हिन्दी साहित्येतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत ग्रंथ है। इस ग्रंथ में लगभग 200 भक्तों के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों का उल्लेख है। इन भक्तों में रामानुज, श्री विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, अंगददेव, शंकराचार्य, नंददास, मीरा, रैदास, कबीर, पीपा, धन्ना आदि प्रमुख हैं। इस ग्रंथ में भक्तों के साथ-साथ सिद्धों, नाथों की वाणी का भी संकलन किया गया है।

यह ग्रंथ इतिहास और साहित्य, दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। 'भक्तमाल' के उपलब्ध संस्करण में उपलब्ध छन्दों की संख्या 214 है तथा लगभग 200 भक्तों के जीवन-चरित्र इसमें वर्णित हैं। भक्तों के जीवन की अलौकिक घटनाओं का वर्णन कर जनता के हृदय में उनके जीवनादर्शों के प्रति आस्था उत्पन्न करना ही रचनाकार का मुख्य लक्ष्य रहा है। ऐसा माना जाता है कि हिन्दी में जीवन-चरित्र लेखन की परंपरा का सूत्रपात भक्तमाल से ही हुआ है। 'भक्तमाल' का मूल्यांकन भक्ति की विधाओं के अंतर्गत भी किया जा सकता है। इस ग्रंथ में नाभादास की काव्य संबंधी धारणाएँ भी रेखांकित करने योग्य हैं। सारांशत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के स्रोतों में यह एक ऐसा स्रोत ग्रंथ है जिसके आधार पर मध्यकाल को नए संदर्भों में आलोकित किया जा सकता है।

कविमाला

वृत्त संग्रह का सर्वप्रथम उदाहरण 'कविमाला' है। इस संग्रह का प्रणयन यदुराय के पुत्र तुलसीराम ने संवत 1712 में किया। इसमें सम्वत 1500 से 1700 तक के 75 कवियों का संग्रह है। यह ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

साहित्य और संवेदना का विकास', डॉ. बच्चन सिंह द्वारा रचित 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' तथा डॉ. सुमन राजे द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' हाल ही में लिखे गए इतिहास ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में वर्तमान काल तक के हिन्दी साहित्य की समीक्षा की गई है तथा इनके नए संस्करण लगातार अपने समय से जुड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति में इतिहास के पुनर्लेखन के लिये यह कारण पर्याप्त प्रतीत नहीं होता।

इन सभी बिन्दुओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष की ओर बढ़ सकते हैं कि साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है या नहीं। जहाँ तक तथ्यों का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि साहित्य के इतिहास के तथ्य बहुत तेजी से बदल रहे हैं। न केवल नए-नए तथ्य सामने आ रहे हैं बल्कि मान्यता प्राप्त तथ्य भी अप्रामाणिक साबित हो रहे हैं। चूँकि इतिहास का विश्लेषण इन तथ्यों पर ही आधारित होता है, इसलिये स्वाभाविक रूप से नए इतिहास की आवश्यकता सिद्ध होती है और यह भी सिद्ध होता है कि इतिहास का पुनर्लेखन आज की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि सभी प्रमाणों के निश्चित हो जाने तक लगातार बनी रहने वाली आवश्यकता है। जहाँ तक दृष्टिकोण का सवाल है, उस बिन्दु पर भी नए इतिहास की ज़रूरत महसूस की जा सकती है। वर्तमान काल में यह माना जा चुका है कि इतिहास का मूल तत्व 'तथ्य' नहीं, उसकी व्याख्या में प्रयुक्त होने वाली 'इतिहास दृष्टि' है। हिन्दी साहित्य के जो इतिहास लिखे गए हैं, उनमें इतिहास दृष्टि धीरे-धीरे परिपक्वता की ओर बढ़ती गई है और अब शायद किसी नई दृष्टि की नहीं बल्कि उन्हीं दृष्टियों के तार्किक समन्वय की आवश्यकता अधिक है। इसके साथ यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि इतिहासकार की दृष्टि किसी भी प्रकार के वैचारिक पूर्वाग्रह या दुराग्रह से मुक्त हो।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर समग्र रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य की इतिहास परंपरा में नवीन इतिहास या प्राचीन इतिहासों के नवीकरण की आवश्यकता बनी हुई है। किसी भी परंपरा में परिपक्वता एक क्षण में नहीं आती बल्कि कई प्रयासों के परिणाम से आती है। वर्तमान में हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा इतनी समृद्ध हो चुकी है कि हम एक आदर्श इतिहास की परिकल्पना कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य को एक ऐसे इतिहास की आवश्यकता है जिसमें वर्तमान समय तक के अनुसंधानों से प्रमाणित नवीन तथ्य समाविष्ट हों, जिसमें कविता या गद्य, मुक्तक या प्रबंध जैसे साहित्य खंडों के बीच इतिहासकारों के मूल्यों से पैदा होने वाले मतभेद न हों और जिसमें आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि का 'युग तत्व', आचार्य द्विवेदी की इतिहास दृष्टि का 'परंपरा तत्व' तथा डॉ. चतुर्वेदी की इतिहास दृष्टि का 'विश्लेषण' तथा 'समन्वय तत्व' एक साथ विद्यमान हों।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. साहित्य के इतिहासों का इतिहास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
2. मिश्रबंधु विनोद का महत्त्व (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2010**
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा का उल्लेख कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2001**
4. हिन्दी साहित्य के इतिहासों का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताइए कि आप किस इतिहास-ग्रंथ को पूर्णतर समझते हैं और क्यों? **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय
3

आदिकाल

3.1 सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य आदिकालीन साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है, जिसका संबंध बौद्ध धर्म की सिद्ध परंपरा से है। सिद्ध आंदोलन वज्रयान से संबंधित है, जिसके समर्थक तंत्र-मंत्र की साधना से सिद्धि प्राप्त करना चाहते थे। पं. राहुल सांकृत्यायन ने सिद्धों की संख्या 84 मानी है, जिनमें प्रमुख हैं- सरहपा, शबरपा, लुईपा, कण्हपा, डोम्भिपा आदि।

अभी तक 14 सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनमें 'दोहा-कोश' तथा 'चर्यापद' सबसे महत्वपूर्ण हैं। सिद्धों ने अपनी मान्यताओं का प्रचार करने के लिये जनभाषा में जो साहित्य रचा, उसी को सिद्ध साहित्य कहा जाता है।

सिद्धों ने अपनी धार्मिक, सांप्रदायिक मान्यताओं को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। बौद्ध परंपरा से संबंधित होने के कारण वे वैदिक मान्यताओं तथा वर्ण-व्यवस्था इत्यादि का तीव्र खंडन करते हैं और नैरात्म्य भावना, सहजशून्य की साधना और कायायोग इत्यादि का वर्णन करते हैं। उनका दावा है कि जो पंडित लोग सारे आगम, वेद, पुराण पढ़ चुके हैं, वे भी परम सत्य को नहीं जानते। सत्य तो यह है कि बुद्ध या परम तत्व का अस्तित्व हमसे बाहर नहीं, हमारे भीतर ही है-

"पंडिअ सअल सत्य बक्खाणअ,
देहहिं बुद्ध बसन्त ण जाणअ।"
"आगम-वेअ-पुणेहि पण्डिअ माण वहन्ति,
पक्क सिरीफले अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति।'"

(जैसे भौंरा पके हुए बेल के बाहर ही बाहर घूमता है, रसास्वादन नहीं कर पाता; उसी प्रकार पंडित लोग आगम, वेद व पुराण को सिर्फ ढोते रहते हैं, उनका सारतत्व नहीं जान पाते)

सिद्धों ने आडम्बरों का विरोध किया है और शून्य पर आधारित साधना प्रक्रिया का समर्थन किया है। इनका मानना है कि कोई व्यक्ति सिद्ध तभी बन सकता है, जब वह अपने मन को हर प्रकार के आकर्षण व मोह से परे ले जाए, जहाँ कोई भी इच्छा या राग-द्वेष साधक के शांत मन को उद्वेलित न कर सके। सरहपा कहते हैं-

"जहि मण पवण न संचरइ, रवि ससि णाह पवेस।
ताहि बढ़ं, चित्त विसाम करु, सरहें कहिउ उएस।"

(जहाँ मन और पवन की गति भी नहीं है, जहाँ सूर्य-चंद्रमा भी प्रवेश नहीं कर सकते, वहीं अपने मन को ले जाओ ताकि चित्त को विश्राम मिले। यही सरहपा का उपदेश है।)

सिद्धों ने साधना मार्ग के रूप में 'पंचमकार' पद्धति को स्वीकार किया है। पंचमकार का अर्थ है- मत्स्य, मदिरा, माँस, मुद्रा तथा मैथुन। इनकी मान्यता थी कि सुखों को चरम स्तर पर भोग कर ही मन को ऐसी अवस्था में लाया जा सकता है, जहाँ वह हर आकर्षण से मुक्त हो जाए। यहाँ सुखों का भोग साधन के रूप में है; साध्य के रूप में नहीं। इन्होंने गुरु को भी अत्यधिक महत्व दिया है, क्योंकि सतगुरु के माध्यम से ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अलावा साधना प्रक्रिया में समस्त बाह्य आडंबरों का निषेध इनकी अन्य विशेषता है।

शिल्प

सिद्धों का शिल्प पक्ष साहित्यिक सूक्ष्मताओं से युक्त नहीं है क्योंकि ये लोग मूलत: कवि नहीं थे बल्कि अपने सम्प्रदाय की मान्यताओं का प्रचार करने के लिये ही साहित्य लिखते थे। इनकी भाषा अर्धमागधी अपभ्रंश थी जिससे आगे चलकर पूर्वी हिन्दी उपभाषा का विकास हुआ। इनका सारा साहित्य मुक्तक रूप में है जो मुख्यत: 'चर्यापद' तथा 'दोहाकोष' के रूप में संकलित है। कहीं-कहीं इन्होंने अपनी आंतरिक अनुभूतियों को एक विशेष प्रतीकात्मक भाषा में व्यक्त किया है, जिसे 'संधा-भाषा' कहते हैं। शिल्प में इनका महत्वपूर्ण योगदान छंद के स्तर पर है। इन्होंने कई प्रकार के छंदों का प्रयोग किया जैसे- दोहा, सोरठा तथा रोला।

अध्याय
4

भक्तिकाल

4.1 भक्ति की अवधारणा

"भक्ति धर्म का रसात्मक रूप है"– आचार्य शुक्ल ने भक्ति की अत्यंत सारगर्भित परिभाषा अपनी सूत्र शैली में इस प्रकार दी है। वस्तुत: धर्म के भीतर ईश्वर या अलौकिक सत्ता के साथ संबंध स्थापित करने की चार प्रमुख प्रणालियाँ या पद्धतियाँ मानी गयी हैं- ज्ञान, कर्म, योग तथा भक्ति। जहाँ तक ज्ञानमार्ग का प्रश्न है, वह न केवल नीरस व शुष्क है बल्कि अत्यंत सूक्ष्म तथा जटिल होने के कारण विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित है। यही कारण है कि शंकराचार्य द्वारा ज्ञानमार्ग की स्थापना के बावजूद लोक जीवन में उसे पूर्ण स्वीजति कभी नहीं मिली। योग मार्ग शारीरिक साधना पर आधारित है जो शुष्क-क्रिया प्रधान होने के कारण नीरस है। पुन: इसमें निहित कठिनाइयों के कारण यह भी एक वर्ग तक ही सीमित है जो कठोर शारीरिक अनुशासन तथा नियमन में समर्थ है। कर्ममार्ग का अर्थ है बाह्य विधि-विधान, आडम्बर, देशाटन, तीर्थाटन इत्यादि। यह मार्ग बोधगम्यता की दृष्टि से सरल है, अत: सर्वजनसुलभ है किन्तु इसमें भी वह रसात्मकता नहीं पाई जाती जो भक्ति में है। इसके अतिरिक्त, आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के लिये यह मार्ग हमेशा कठिन माना गया है। भक्ति मार्ग धर्म का रसात्मक रूप है क्योंकि यह बुद्धि, शरीर या क्रियाओं पर आधारित न होकर मनुष्य की भावनाओं पर आधारित है। ईश्वर विषयक रति के भाव की अभिव्यक्ति ही भक्ति है। स्पष्ट है कि भक्ति न केवल सर्वजनसुलभ है बल्कि सर्वाधिक मार्मिक भी है। यही कारण है कि लोक जीवन में जब धर्म ने आंदोलन का रूप लिया तो उसका माध्यम भक्ति ही बनी; न कि ज्ञान, योग या कर्म।

4.2 निर्गुण भक्ति बनाम सगुण भक्ति

भक्ति की अवधारणा को कई दृष्टियों से वर्गीकृत किया जाता है जिनमें सबसे प्रचलित वर्गीकरण निर्गुण व सगुण भक्ति का है। इस वर्गीकरण का मूलाधार यह है कि भक्त अपने आराध्य को सगुण मानता है या निर्गुण? गुण का अर्थ विशेषता से है। जिस ईश्वर को कुछ निश्चित विशेषणों से परिभाषित या लक्षित किया जा सके, उसे सगुण ईश्वर कहते हैं। सगुण ईश्वर में सर्वशक्तिमत्ता, दयालुता, प्रेम तथा न्यायप्रियता जैसे गुण आरोपित किये जाते हैं ताकि वह भक्त की भावनाओं का सहज आलम्बन बन सके। वैष्णव वेदांती दार्शनिकों जैसे रामानुज, मध्व, वल्लभ इत्यादि ने तो सगुण ईश्वर की धारणा को स्वीकारा ही है, सामी धर्मों जैसे ईसाइयत आदि ने भी सगुण ईश्वर को ही माना है। हिन्दी भक्ति परम्परा में रामभक्ति काव्यधारा तथा कृष्णभक्ति काव्यधारा सगुण ईश्वर को स्वीकार करके बढ़ी हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों धाराओं के कवियों ने निर्गुण ईश्वर पर प्रश्न भी खड़े किये हैं। उदाहरण के लिये, तुलसीदास क्रोधित होकर कहते हैं कि *"तुलसी अलखहिं का लखै राम नाम जपु नीच"*। इसी प्रकार, सूरदास की गोपियाँ निर्गुणमार्गी ऊद्धव से पूछती हैं- *"निर्गुण कौन देस को बासी"*।

किन्तु, सगुण ईश्वर की धारणा भावनात्मक संतुष्टि चाहे प्रदान करे, वह दार्शनिक तार्किक प्रश्नों का सामना नहीं कर पाती। इसका कारण यह है कि जब किसी सत्ता की व्याख्या या निर्वचन कुछ निश्चित विशेषणों अथवा गुणों से किया जाता है तो प्रत्येक विशेषता कई अन्य संभावित विशेषताओं के अभाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिये, यदि कृष्ण राधा से प्रेम करते हैं तो अन्य प्राणियों से उनका उतना प्रेम नहीं स्वीकारा जा सकता। इसी प्रकार यदि राम अयोध्या के राजा हैं तो विश्व के शेष सभी क्षेत्र उनके लिये समान महत्व नहीं रख सकते। इन्हीं तार्किक समस्याओं के कारण कई दार्शनिक निर्गुण ईश्वर को स्वीकारते हैं। ध्यातत्व है कि यहाँ निर्गुण का अर्थ गुणहीन नहीं, गुणातीत है। तात्पर्य यह कि ईश्वर में गुणों का वैविध्य व गुणों की पूर्णता इतनी अधिक है कि उसे किसी विशिष्ट गुण से परिभाषित नहीं किया जा सकता। ऐसे ईश्वर को निर्गुण, निराकार, निरंजन, अलख इत्यादि कहकर पुकारा जाता है। अद्वैतवेदान्ती दार्शनिक शंकर ने ब्रह्म को निर्गुण बताया है और भक्तिकालीन काव्य परम्परा में सन्त काव्यधारा व सूफी काव्यधारा में निर्गुण ईश्वर को भक्ति का आलम्बन बनाया गया है। कबीर कहते हैं– *"दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।"* इसी प्रकार, वे एक अन्य संदर्भ में कहते हैं-

अध्याय
5

रीतिकाल

5.1 रीति से अभिप्राय

इस प्रश्न को लेकर काफी मतभेद रहा है कि रीतिकाल नाम में निहित 'रीति' शब्द का अर्थ क्या है? कुछ विद्वान मानते हैं कि यह काव्यशास्त्र का रीति संप्रदाय है जिसके प्रवर्तक आचार्य वामन हैं। इस संप्रदाय में काव्य की प्रमुख शैलियों के रूप में कुछ रीतियों की चर्चा की गई है। भाषा के विशेष प्रकार के प्रयोग से ये रीतियाँ निर्धारित होती हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सहित कई विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि 'रीतिकाल' नामकरण में रीति शब्द का प्रयोग रीति संप्रदाय के संदर्भ में नहीं हुआ है। इसका अर्थ है- अनुकरण करने की प्रवृत्ति। इस काल में बहुत सी रचनाएँ काव्यशास्त्रीय या अन्य प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथों अथवा सिद्धांतों के अनुकरण में लिखी गईं। अनुकरण की यह परंपरा या मानसिकता ही 'रीति' कहलाई। इस अर्थ में, रीतिकाव्य वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गई हो।

रीतिकाल की इस अनुकरणमूलक मानसिकता के लिये 'रीति' शब्द का प्रयोग हिन्दी के आधुनिक साहित्येतिहासकारों ने नहीं किया, बल्कि रीतिकाल के कवियों ने ही करना आरंभ कर दिया था। उदाहरण के लिये, कुछ कवियों के कथन देखे जा सकते हैं -

"रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार"। (चिंतामणि)
"अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति।" (देव)
"काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों।" (भिखारीदास)

'रीति' शब्द के इस प्रकार के सर्वसम्मत प्रयोग के कारण हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने भी इस काल की विशिष्ट काव्य-प्रणाली को 'रीतिकाव्य' कहना ठीक समझा है।

5.2 रीतिकाल के उदय की पृष्ठभूमि

साहित्य अपने समय तथा स्थान की परिस्थितियों से अनिवार्यत: प्रभावित होता है। इसलिये साहित्येतिहासकार के लिये यह जानना आवश्यक है कि रीतिकाव्य का उदय किन परिस्थितियों के कारण हुआ?

रीतिकाल का आरंभ उस युग में हुआ जब राजनीतिक दृष्टि से मुगल सत्ता भारत की केंद्रीय सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित थी। छोटे राज्यों-रजवाड़ों पर नियंत्रण होने के कारण युद्ध प्राय: नहीं हो रहे थे। सत्ता का चरित्र आदिकाल की ही तरह शोषण पर आधारित था। अंतर यह था कि आदिकाल में केंद्रीय सत्ता के अभाव में युद्ध लगातार होते रहते थे जबकि इस काल में युद्ध नहीं के बराबर हो रहे थे। दरबारी परिवेश में मूलत: दो भावों की कविता संभव है - वीरता और शृंगार। आदिकाल में युद्ध हो रहे थे इसलिये दोनों प्रवृत्तियाँ साहित्य में थीं। इसके विपरीत, रीतिकाल में युद्ध नहीं थे। अत: शृंगार ही कविता के केंद्र में है। कविता जैसे आदिकाल में दरबार में थी, वैसे ही रीतिकाल में भी है।

सामाजिक रूप से यह काल भी सामंतवादी स्थितियों का ही काल है। सामंतवाद में एक वर्ग भूमि का मालिक होता है तथा किसान भूमि पर खेती करते हैं जिनका कोई मालिकाना हक नहीं होता। इस प्रकार एक वर्ग बेहद परिश्रम करके भी शोषित रहता है जबकि दूसरा वर्ग बिना परिश्रम किये बहुत अमीर हो जाता है। इस अमीर किंतु श्रमहीन वर्ग में रुचियों का विकास होता है। रीतिकाल में एक ऐसी ही रुचि विकसित हुई और राजा व सामंत चाहने लगे कि वे शास्त्रीय ज्ञान से युक्त हों। ऐसी स्थिति में एक विकल्प तो यह था कि ये स्वत: शास्त्रों का अध्ययन करें किंतु इस काम के लिये अपेक्षित धैर्य, विवेक और संयम उनमें नहीं था। ऐसी स्थिति में रीतिकाल के कवियों के एक वर्ग ने यह दायित्व संभाला। उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रों तथा अन्य शास्त्रों में दिये गए लक्षणों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया तथा फिर उस सिद्धांत या लक्षण को राजा को समझाने के लिये उसके उदाहरण के रूप में कविताएँ रचीं। यह परंपरा 'लक्षण-ग्रंथ-परंपरा' कहलाती है तथा इस धारा में शामिल कवियों को कभी-कभी 'आचार्य कवि' भी कह दिया जाता है। सामान्य रूप से यह धारा 'रीतिकाव्य' या 'रीतिबद्ध काव्य' कहलाती है।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456